|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग

1/2 (श्लोक 1-6), शनिवार, 25 जनवरी 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/I0Bb00f8wXE

ब्रह्माण्ड उल्टे मूल वाला वृक्ष है।

राम राम जय राजा राम, बने हम हिन्द के योगी गीत, हनुमान चालीसा पाठ, देशभक्ति गीत, परम्परागत विधि से दीप प्रज्ज्वलन, श्रीकृष्ण स्तुति, और गुरु वन्दना के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ।

बड़े आनन्द का विषय है कि मनुष्य जीवन को सफल सार्थक करने के लिए, परमोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, इस लोक-परलोक में विजय प्राप्त करने के लिए, हर प्रकार से मानव जन्म के उत्थान के लिए हम श्रीमद्भगवद्गीता जी को पढ़ने, उच्चारण सीखने, चिन्तन, मनन करके जीवन में लाने के लिए प्रयासरत हैं। यह हमारे पूर्व जन्म के और हमारे पूर्वजों के पुण्य फलित हुए हैं। इस जन्म में सन्त महात्मा की कृपा दृष्टि हम पर पड़ी है। हमारा भाग्योदय हो गया कि हमें भगवद्गीता का सान्निध्य मिल गया है।

अत्यन्त विनम्रता से, दृढ़तापूर्वक हमें मानना चाहिए कि गीताजी को हमनें नहीं चुना है, अपितु श्रीभगवान ने हमें इस के लिए चुना है। बिना उनकी कृपा के गीताजी पढ़ना, जानना, देख-सुन पाने का प्रश्न ही नहीं उठता है। इसका प्रमाण है कि अट्ठारहवें अध्याय में श्रीभगवान ने स्वयं कहा है कि जो भगवद्गीता को पढ़ेगा, वह मुझको प्राप्त हो जाएगा। यह सबके लिए अभूतपूर्व प्रस्ताव है।

ऋषिकेश आश्रम में ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामीजी रामसुखदास जी महाराज ने एक बार प्रवचन में कहा कि यहाँ पर जितने लोग बैठे हैं, उनकी मुक्ति निश्चित है। एक सौ तीन वर्ष के भगवत्प्राप्त महापुरुष के मुख से यह वचन निकला, तो सभी ने निश्चित मान लिया कि हमारा तो उद्धार होना ही है। कुछ क्षण के लिए स्वामीजी चुप रहे। फिर उन्होंने कहा, भगवत्प्राप्ति निश्चित है, पर कब होगी? यह तुम्हारी लगन और गति पर निर्भर करेगा। इस जन्म में भी हो सकती है, दो से तीन जन्म भी लग सकते हैं।

हमें किसी गन्तव्य पर जाना होता है तो गन्तव्य के मार्ग पर आ जाने से हम मञ्ज़िल तक पहुँच ही जाते हैं। जैसे कि मुम्बई से दिल्ली जाना है, मुम्बई के राजमार्ग पर आ गये और अगर गति और मार्ग नहीं बदला तो अवश्य ही पहुँच जाएँगे। श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने वाले को भगवद्धाम की प्राप्ति ज़रूर होगी, यह श्रीभगवान के मुख से की हुई घोषणा है।

गीताजी, सबसे छोटा ग्रन्थ है। इस में केवल सात सौ श्लोक हैं। गीताप्रेस ने तो यह एक पृष्ठ में छाप दिया है। दियासलाई के बक्से के आकार में भी छाप दिया। यह छोटा है, किन्तु बहुत शक्तिशाली है। भारत के ही नहीं विदेशों के दार्शनिकों ने भी

इसकी महत्ता को स्वीकार किया है।

गीता प्रेस के संस्थापक ब्रह्मलीन श्रद्धेय जयदयाल जी गोयन्दका जी ने अपने प्रस्ताविक में भी लिखा है। यह रोङ्गटे खड़े होने वाली बात है, क्योंकि साधारण मनुष्य की लिखी हुई बात नहीं है। सारे शास्त्रों को पढ़ कर, उन्होंने हिन्दी में अनुवाद करके शुद्ध छाप कर उपलब्ध करवा दिया है। वे हिन्दू समाज पर उपकार करने वाले अद्वितीय महापुरुष थे।

अगर गीता प्रेस नहीं होती तो गीताजी और रामायण हम सभी नहीं पढ़ पाते। ये ग्रन्थ भी कहीं अजायबघर में रखे होते।

जयदयाल गोयन्दका जी ने प्रस्तावना में लिखा है कि सारे शास्त्रों के अध्ययन के बाद उन्होंने पाया कि गीता के समान मानव का कल्याण करने वाला कोई ग्रन्थ नहीं है। समस्त वेदों का सार उपनिषद् हैं और उनका सार गीताजी हैं। सारे उपनिषदों को दुहकर भगवद्गीता का उपदेश किया है, इसलिए हमारी आचार्य परम्परा में रामानुजाचार्यजी ने लिखा है-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता।।

एक गीता जी पढ़ ली और अन्य शास्त्र नहीं भी पढ़ा तो कोई फर्क नहीं पड़ता है। अन्य सारे ग्रन्थ विषयानुकूल हैं। कोई किसी विषय का मार्गदर्शन करता है, तो कोई किसी अन्य विषय का। यह श्रीमद्भगवद्गीता ग्रन्थ किसी मार्ग का आग्रही नहीं है। गीताजी में श्रीभगवान ने बताया कि तुम कुछ भी करो, तुम्हारे अन्दर सद्गुण, सदाचार के कौन से गुण प्रकट होते हैं, यह महत्त्वपूर्ण है। बारहवें अध्याय में भक्त के उनचालीस लक्षण बताये गए हैं। बारहवें अध्याय के तेरहवें श्लोक से श्रीभगवान ये लक्षण बताना शुरू करते हैं।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
12:13

यहाँ से श्रीभगवान कहते हैं कि हमें देखना चाहिए कि हमारे अन्दर से द्वेष भाव गया कि नहीं? ध्यान, पूजा उपासना जो भी करते हैं, उसका परिणाम क्या है? व्यवहार में क्या बदलाव आया। सात्त्विकता कितनी बढ़ी?

श्रीभगवान कुशल चिकित्सक हैं। रोगी चिकित्सक को लम्बी कहानी सुनाना चाहता है। चिकित्सक पूछते हैं, तकलीफ़ क्या है? कल क्या खाया? मल-मूत्र कैसा हुआ? चिकित्सक का, श्रीभगवान का सारा ध्यान लक्षणों पर होता है। व्यक्ति पूजा कैसे भी करता हो, जप-तप ध्यान रुद्राभिषेक, उपवास करता हो, श्रीभगवान कहते हैं, वो तो करने ही पड़ेंगे, उसी को भक्ति मत मानो। जीवन में बदलाव और परिणाम क्या है? यह ग्रन्थ परिणाम पर केन्द्रित है। इसमें लक्षणों पर विशेष ध्यान है।

दूसरे अध्याय में श्रीभगवान स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हैं।
बारहवें में भक्त के, तेरहवें में ज्ञानी, चौदहवें में गुणातीत,
सोहलहवें अध्याय में दैवीय गुणों वाले मनुष्य के लक्षण बताये हैं।

श्रीभगवान यह बताते हैं कि तुम जिस भी मार्ग पर चल रहे हो, परिणाम क्या हुआ? अगर कपट, द्वेष, झूठ बोल रहे हो तो तुम भक्त नहीं हो। पूजा बेकार नहीं है, पूजा का परिणाम भक्ति तब तक नहीं मिलेगी, जब तक ये गुण नहीं होंगे।

यह प्रश्न बार बार पूछा जाता है कि श्रीभगवान ने गीताजी अर्जुन को ही क्यों सुनायी, जब कि धर्मराज तो युधिष्ठिर हैं। गीता जी पढ़ेंगे तो पता चलेगा। श्रीभगवान ने अलग-अलग स्थानों पर अर्जुन को अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया है।

पार्थ कह कर बहुत बार सम्बोधित किया, किन्तु अर्जुन के दो गुण श्रीभगवान को सबसे अधिक प्रिय हैं। जिसकी चर्चा गीताजी में की है-

अनघ- जिसने अपने पूरे जीवन में पाप नहीं किया। पूरी महाभारत में अर्जुन गलत काम करते हुए नहीं दिखे। वे जोर से बोलते ही नहीं हैं। भीम, नकुल, सहदेव, सभी अपना मत रखते हैं। युधिष्ठिर महाराज के द्यूत हारने पर सभी भाईयों सहित द्रौपदी ने उन्हें सुनाया, पर अर्जुन ने एक शब्द नहीं कहा।

अर्जुन सबसे बड़े महावीर हैं। राजसूय यज्ञ में चारों पाण्डव चार दिशाओं में गये, तीन पाण्डव तीन दिशाओं से जितना धन लेकर आये, उससे अधिक अर्जुन अकेले लाए। इससे उनका नाम **धनञ्जय** पड़ गया।

इतनी शूरवीरता थी कि महादेव को मल्लयुद्ध में प्रसन्न किया। अर्जुन ने महादेव से दस दिन तक मल्लयुद्ध किया, हारे नहीं।

अर्जुन ने विराटनगर में सारे कौरवों के महारथियों के विरुद्ध राजकुमार उत्तर को सारथी बना कर वृहन्नला के रूप में अकेले ही परास्त किया। इतना पराक्रम होते हुए भी, अर्जुन ने अपने बल का, किसी भी जगह न बड़ाई की न निन्दा ही की।

श्रीभगवान ने कहा अर्जुन तुम अनघ तो हो ही, अनसूय भी हो।

श्रीभगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता यूँ ही अर्जुन को नहीं कह दी, अर्जुन इसके लिए सुपात्र हैं। अभिमन्यु का वध हुआ, नृशंस तरीक़े से सात महारथियों ने घेर कर उसका वध किया, अर्जुन ने घोर प्रतिज्ञा ले ली कि मैं कल जयद्रथ का वध करूँगा।

ऐसी घोर प्रतिज्ञा कर के अर्जुन जाकर सो गये। श्रीभगवान अर्जुन के कक्ष में गये, उन्होंने अर्जुन को जगाया और कहा कि तुम निश्चिन्त होकर सो रहे हो। मैं चिन्ता के मारे जला जा रहा हूँ। अर्जुन ने कहा, मधुसूदन जिसकी चिन्ता आप करते हों, वह स्वयं किसी बात की चिन्ता क्यों करें। आप मेरी बात पूरी करवा देंगे।

एक और बहुप्रचलित प्रसङ्ग है। श्रीभगवान सो रहे थे। पहले दुर्योधन आया, श्रीभगवान के सिर की तरफ़ बैठ गया, अर्जुन आये, श्रीभगवान के चरणों के पास बैठ गये। श्रीभगवान की नींद खुली, उन्होंने अर्जुन को पहले देखा और उसे अपना मन्तव्य बताने के लिए कहा। अर्जुन को पहले माँगना था। श्रीभगवान ने कहा-

"एक तरफ़ मैं अकेला निःशस्त्र, और एक तरफ़ मेरी दो अक्षौहिणी नारायणी सेना, जिसे कोई परास्त नहीं कर सकता, दोनों में से अर्जुन कुछ भी माँग लो।"

दुर्योधन तो भयभीत, चिन्तित था कि अर्जुन तो सेना ही माँगेगा। निःशस्त्र कृष्ण को अकेले ले कर हम क्या करेंगे? आश्चर्य की बात है कि बिना एक पल भी गंवाए अर्जुन ने कहा-

"हे केशव! आप निहत्थे हो या निःशस्त्र! मुझे चिन्ता नहीं हैं। बस आप मेरे पास खड़े हो जाइएगा। फिर मुझे किसी सेना की आवश्यकता नहीं है। मैं अकेला ही तीनों लोकों के देवताओं और राक्षसों को हरा दूँगा।"

अर्जुन ने ऐसे ही यह बात नहीं कह दी। खाण्डव-वन में अर्जुन ने श्रीकृष्ण भगवान के साथ खड़े होकर इन्द्र और अन्य देवताओं को हराया था। अर्जुन में आत्मविश्वास है कि वे सबको हरा देंगे। आज अर्जुन ने निहत्थे कृष्ण को चुना, यह उनकी प्रेम भक्ति है। जितना अर्जुन श्रीभगवान से प्रेम करते है, उतना श्रीभगवान भी अर्जुन से प्रेम करते हैं।

खाण्डव वन को जलाने के बाद अग्निदेव ने सङ्कोच में कहा कि मैं देवता हूँ और आप अभी मनुष्य रूप में हैं। अर्जुन को अग्निदेव ने तो वरदान दिया ही, वरुणदेव और इन्द्रदेव ने भी अर्जुन को दिव्य रथ और गाण्डीव दिये।

भगवान श्रीकृष्ण को अग्निदेव ने पूछा आप परब्रह्म, परमात्मा हैं, आप मनुष्य रूप में अवतरित हुए हैं। देवताओं को दर्शन देने पर कुछ देना ही पड़ता है। श्रीभगवान आप कुछ माँग लें।

सामान्य देवता अग्निदेव से साक्षात् परमात्मा प्रसन्न करके, आदर करके माँगते हैं कि अर्जुन के प्रति उनकी प्रीति अखण्ड रहें।

इसमें अर्जुन की उच्चता है। श्रीभगवान ने किसी की प्रीति माँगी, यह एक मात्र उदाहरण है।

इतने वीर अर्जुन युद्ध से पहले मोहग्रस्त हो गये। श्रीभगवान को अर्जुन को गीताजी सुनानी नहीं थी। श्रीभगवान दो चपत लगाते, अर्जुन खड़े हो जाते। श्रीभगवान की बात अर्जुन टाल सकें, ऐसा नहीं था। उनका अर्जुन में अद्‌भुत प्रेम था।

अर्जुन को निमित्त बनाकर श्रीभगवान ने सम्पूर्ण संसार और हमारे लिए यह उपदेश किया है, यह केवल अर्जुन के लिए नहीं है।

पूरी गीताजी में श्रीभगवान ने कहा, हे अर्जुन! सब दैवीय गुण तुम में पहले से ही हैं, तुम चिन्ता मत करो।

ये सारी बातें हम लोगों के लिए ही हैं।

15.1

श्रीभगवानुवाच
ऊर्ध्वमूलमधः(श्) शाखम्, अश्वत्थं(म्) प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस्तं(वँ) वेद स वेदवित्॥15.1॥

श्रीभगवान् बोले – ऊपर की ओर मूल वाले (तथा) नीचे की ओर शाखा वाले (जिस) संसार रूप अश्वत्थ वृक्ष को (प्रवाह रूप से) अव्यय कहते हैं (और) वेद जिसके पत्ते हैं, उस संसार-वृक्ष को जो जानता है, वह सम्पूर्ण वेदों को जानने वाला है।

विवेचन- बारहवाँ अध्याय सबसे छोटा है, किन्तु बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें अनुष्टुप छन्द के बीस श्लोक हैं। पन्द्रहवें अध्याय में भी बीस श्लोक ही हैं। उसमें त्रिष्टुप छ्न्द के भी कुछ श्लोक हैं। इस एक अध्याय को श्रीभगवान ने शास्त्र की उपमा दी है। बीसवें श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं-

इति गुह्यतमं शास्त्रम्, इदमुक्तं मयाऽनघ।
एतद्‌बुद्‌ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥
15:20

इस अध्याय में ईश्वर, प्रकृति और जीव तीनों का विश्लेषण किया गया है। इन तीनों से परे कुछ नहीं है, इसलिए इसे शास्त्र की उपमा दी गयी है। भोजन करते हुए, यात्रा शुरू करते समय, जीने-मरने में, माङ्गलिक अवसर और विवाह के अवसर पर पन्द्रहवें अध्याय के वाचन की परम्परा है।

इस अध्याय में श्रीभगवान ने स्वयं का गोपनीय और पुरुषोत्तम स्वरूप प्रकट किया है।

श्रीभगवान ने इस अध्याय का आरम्भ एक रूपक से किया है। गीता को देख कर या पढ़ कर भी समझ में आ जाये, ऐसा नहीं है। पूर्व जन्म के कोई प्रारब्ध ही हैं कि हम गीता का पठन कर रहें हैं या विवेचन सुन रहे हैं और इसके अर्थ को समझ पा रहें हैं। अन्यथा इसका समझ में आना कठिन है। किसी ने इसको पढ़कर समझा हो, ऐसा नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता किसी माध्यम से समझने से ही समझ में आती है।

यहाँ पर श्रीभगवान ने ब्रह्माण्ड की तुलना उल्टे पीपल के पेड़ से की है।

एक अलग प्रकार के उदाहरण से यह तुलना की गई है। ऊर्ध्वमूलक, इस वृक्ष की जड़ ऊपर की ओर है। इसका मतलब जड़ों

की दिशा ऊपर की ओर होगी, साधारणतः हम यह ही समझते हैं। ऊपर का अर्थ हमेशा ऊपर ही होता है, ऐसी बात नहीं है।

उदाहरण स्वरूप जैसे एक बच्चा कक्षा दो से तीन में गया। इसका मतलब यह कदापि नहीं होता कि वो दो तल्ले में पढ़ता था, अब तीन तल्ले में जाकर पढ़ेगा। हो सकता है तीसरी कक्षा की पढ़ाई निचले तल्ले में ही हो। सीधी बात यह है कि वो ऊँची कक्षा में दाख़िला पा गया है। ऊर्ध्व मूल भी, उसकी उच्चता को ही दर्शा रहा है, अर्थात् उसका मूल ऊपर की ओर हो एवम् शाखा नीचे की ओर। ऐसा कौन सा पेड़ है, जिसकी शाखा ऊपर की ओर हो?

दूसरा उदाहरण देखें तो मनुष्य शरीर के हाथ, पैर कट जायें, तो भी उसके प्राण जीवित रह सकते है। अगर शिरोघात हो जाये तो उसे नहीं बचाया जा सकता। इसका कारण है कि मनुष्य के शरीर की जड़ें मस्तिष्क में ही हैं। ठीक ऐसे ही पेड़ की शाखा, तना, टहनियाँ कुछ भी काट दीजिए, पेड़ जीवित रहेगा, किन्तु जड़ें काट दी गईं तो पेड़ को बचाना मुश्किल है।
श्रीभगवान ने कहा- अश्वत्थ। इसका तना **अश्वत्थम् यानी पीपल के पेड़** का है।

अश्वत्थम् का एक अर्थ और है । श्व माने कल, अश्व यानी जो कल न रहे। यह संसार प्रतिक्षण बदल रहा है। जो अभी है वह अगले क्षण नहीं होगा। जो हर क्षण बदल रहा है वही संसार है, वही ब्रह्माण्ड है।

अश्वत्थ यानी पीपल के पेड़ का पत्ता सबसे अधिक चलायमान होता है। बिल्कुल भी हवा न हो तो भी पीपल का पत्ता धीरे-धीरे हिलता रहता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि यह संसार भी चलायमान है, परिवर्तनशील है, किन्तु अव्यय है, यानी इसका नाश नहीं होता।

संसार का नाश नहीं होता। उदाहरण से समझें तो एक कागज को क्या हम नष्ट कर सकते हैं? फाड़ देने से इसके छोटे-छोटे टुकड़े हो जाएँगे। पानी में भिगो देंगे तो लुगदी हो जाएगी। जला देंगे तो कार्बन में बदल जाएगा। यानी स्वरूप बदलेगा, किन्तु कागज नष्ट नहीं होगा। इसी प्रकार संसार में कुछ भी नष्ट नहीं होता है, इसलिए संसार का वजन घटता-बढ़ता नहीं है। हमारी जनसँख्या बहुत यानी कई गुना बढ़ गई तो पृथ्वी का वजन बढ़ना चाहिए। पर हम देखते हैं कि वजन नहीं बढ़ता। मतलब स्वरूप ही बदलता है।

मनुष्य जन्मता है तो पञ्च-तत्त्वों से शरीर का निर्माण होता है, मरता है तो शरीर पञ्च-तत्त्वों में मिल जाता है। यह संसार अव्यय है। ज्ञान इसके पत्ते हैं। असङ्ख्य पत्ते हैं तो ज्ञान भी अनन्त है।

वेदवित् अर्थात जो इसको जान ले।
जानने के भी कई स्तर हो सकते हैं। किसी को पूछो भगवद्गीताजी के बारे में जानते हो तो वह बोलेगा, हाँ जानता हूँ। चलचित्र में देखा है, न्यायालय में किसी की को बोलने के पहले गीताजी पर हाथ रख कर शपथ दिलाई जाती है, बस इतना ही जानता हूँ।

फिर एक व्यक्ति से मिलें जो लर्नगीता से जुड़ा है, वो बोलेगा हाँ मुझे पता है, इसमें अट्ठारह अध्याय हैं, सात सौ श्लोक हैं, श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद है। जानता यह भी है। फिर किसी ने बताया उसे श्लोक याद भी हैं, किन्तु अर्थ नहीं पता। इसके आगे जानने वाले इन श्लोकों का विवेचन तक कर सकते हैं।

कुछ हमारे महाराज जी जैसे महात्मा भी होते हैं, जो श्रीमद्भगवद्गीता जी को जीते हैं। उनके दृष्टिकोण में यह लक्षित भी होती है।

जानते सभी हैं परन्तु जानने का स्तर अलग-अलग है इसलिए परिणाम भी अलग-अलग होते हैं।

एक बार स्वामीजी महाराज चेन्नई गये। उन्होंने देखा कि एक पाँच वर्ष का बालक अङ्ग्रेज़ी का अख़बार पढ़ रहा था। महाराज जी ने पूछा तुम अख़वार पढ़ सकते हो क्या? वो बोला हाँ बिल्कुल। उसने पढ़ कर सुनाया। टी, एच, ई टी, आई, एम, ई, एस, ओ, एफ, आई, एन, डी, आई, ए।

(The Times of India)

इसका अर्थ क्या है? वह बोला, इतना ही जानता हूँ, इतना ही सीखा है। उसने अक्षरों को पढ़ा। कोई कह सकता है कि क्या उस बालक को पढ़ना नहीं आता? नहीं, उसे पढ़ना आता है, जिस अर्थ में अख़बार पढ़ना हम मानते हैं, वैसा वह बालक नहीं जानता। सबकी जानने के स्तर की अलग-अलग बात है। कोई अर्थ सहित आराम से पढ़ेगा और कोई उस बालक की तरह।

15.2

अधश्चोर्ध्वं(म्) प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।2।।

उस संसार वृक्ष की गुणों (सत्त्व, रज और तम) के द्वारा बढ़ी हुई (तथा) विषय रूप कोंपलों वाली शाखाएँ नीचे, (मध्य में) और ऊपर (सब जगह) फैली हुई हैं। मनुष्यलोक में कर्मों के अनुसार बाँधने वाले मूल (भी) नीचे और (ऊपर) (सभी लोकों में) व्याप्त हो रहे हैं।

विवेचन:- आगे श्रीभगवान इस वृक्ष का विस्तार करते हुए बताते हैं कि इस ऊर्ध्व वृक्ष की जड़ो में परमात्मा स्थित हैं।

ऊर्ध्व वृक्ष की जड़ो में परमात्मा विद्यमान हैं।
आप उसे परमात्मा, सगुण, निर्गुण, अपने किसी इष्ट देव, किसी का भी नाम दे दें।

इसके तने में ब्रह्माज़ी हैं।
उनके द्वारा ही वृक्ष की दृढ़ता है। ब्रह्माजी द्वारा तीनों गुणों का निर्माण हुआ है। इन गुणों से युक्त होकर अलग-अलग तरह की योनियाँ बनती हैं।

ऊपर की और देव-योनि है, बीच में मनुष्य योनि, नीचे की और तिर्यक योनियाँ है।

चौदह लोक कहे गये हैं। पृथ्वी के ऊपर छः लोक हैं और नीचे सात लोक हैं।

ऊपर के लोकों में देवता विराजते हैं और नीचे के लोक में कीट, पतङ्ग आदि अधम योनियाँ विराजती हैं।

चौदह लोकों में सात तो पृथ्वी से शुरू करते हुए ऊपर स्थित हैं और सात पृथ्वी से नीचे हैं।

ऊपर
भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और ब्रह्मलोक हैं।

नीचे वाले लोक-
अतल, वितल, सतल, रसातल, तलातल , महातल और पाताल हैं।

छ्न्द अर्थात् इसके पत्ते वेद हैं।
इसकी जड़ो में अहम्, वासना, कामना विराजती हैं। ये जड़े चारो तरफ़ नीचे - ऊपर के सभी लोकों में व्याप्त हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि इस वृक्ष को हमारे कर्म बाँधते हैं। मैं, मेरा के कारण ही हम कर्म बन्धन में फँसते हैं।

हम सुनते हैं कि यूक्रेन युद्ध में बहुत से लोग मारे गये। हम सुन कर आगे बढ़ जाते हैं। पता चले कि मेरा कोई स्वजन यूक्रेन में मर गया तो हम रोने लगते हैं। एक को मैंने अपना माना तो कर्म बन्धन बन गया। मैं, मेरा के कारण साधारण लगने वाली खबर हमे दुःखी कर देती हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि वासना हमें बाँधती है। कर्म फल से हम चिपक जाते हैं। वासना के बिना मनुष्य रह नहीं सकता।

ये इच्छाएँ ही वासनायें हैं। ये तीनों लोकों में व्याप्त हैं। ये वृक्ष की जड़े हैं।

तीन गुणों से ही पञ्च महाभूतों का निर्माण हुआ है। इनसे पाँच तत्त्वों का निर्माण हुआ है।

शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और दर्शन । इनके द्वारा ही मनुष्य सारे कर्मों में लिप्त होता है।

15.3

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते, नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं(म्) सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।3।।

इस संसार वृक्ष का (जैसा) रूप (देखने में आता है), वैसा यहाँ (विचार करने पर) मिलता नहीं; (क्योंकि इसका) न तो आदि है, न अन्त है और न स्थिति ही है। इसलिये इस दृढ़ मूलों वाले संसार रूप अश्वत्थ वृक्ष को दृढ़ असङ्गता रूप शस्त्र के द्वारा काटकर –

विवेचन - श्रीभगवान आगे कहते हैं कि अर्जुन! तुम भ्रमित मत होना। यह जो ब्रह्माण्ड है, वह ऐसे वृक्ष जैसा है पर ऐसा नहीं है। यह मात्र उदाहरण है। इस वृक्ष का आदि, मध्य और अन्त है, परन्तु ब्रह्माण्ड का न आदि है और न अन्त है। यह अनन्त स्थिति है। यह वृक्ष जैसे स्थिरता से खड़ा है, ब्रह्माण्ड वैसा नहीं है। यह एक तरह से टिकता ही नहीं है। इसका कोई स्थिर स्वरूप नहीं है। यह हिलता ही रहता है, निरन्तर बदलता रहता है।

इसकी जड़ो में जो अहंता, वासना और कामना हैं, उनसे छूटा नहीं जा सकता है। असङ्ग के शस्त्र से ही इसको काट सकते है।

इस ब्रह्माण्ड से कैसे निकलना है? चौदह लोकों के बारे में हमने अभी जाना है।

चौरासी लाख योनियाँ हैं। नभचर, जलचर, थलचर, अण्डज, श्वेदज और उद्भिज विभिन्न योनियाँ है।

पञ्चभूतों से मनुष्य शरीर का निर्माण हुआ है। देवताओं का शरीर प्रकाश स्वरूप है, तो भूतों का शरीर वायु रूप है। किसी के दो पैर हैं, किसी के चार, आठ और उससे भी अधिक। वनस्पतियाँ है, जीवाणु, कीटाणु, ऐसे चौरासी लाख योनियाँ है।

यह सारी प्रकृति सत्, रज और तम इन तीनों गुणों से ही बनी है।

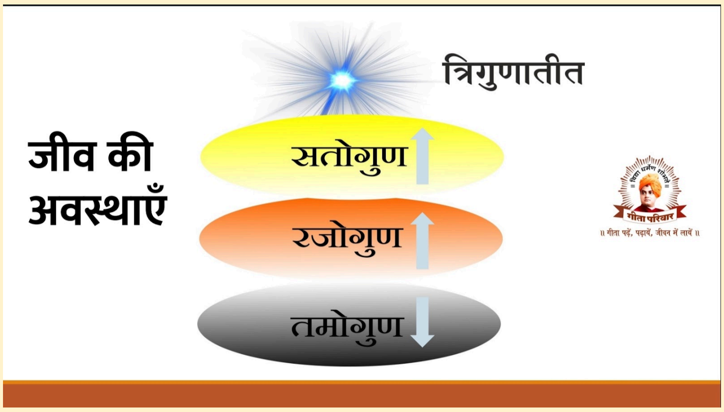

जिसके जैसे कर्म होते है, वह वैसी योनियों में ही जन्म लेता है। करोड़ों करोड़ जन्म से यही क्रम चल रहा है। आदि शङ्कराचार्यजी ने कहा है-

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे, कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ।
भजगोविन्दं भजगोविन्दं, गोविन्दं भजमूढमते।
नामस्मरणादन्यमुपायं, नहि पश्यामो भवतरणे ।

कर्मों के अनुसार ही हमें बार बार जन्मना और मरना होता है। यदि अच्छे कर्म किए हैं, तो ऊपर के लोकों में जाते हैं। बुरे किए हैं, तो तिर्यक् योनि में चले जाते हैं।

श्रीभगवान ने एक भूलभुलैया वाला खेल रचा है। टेढ़े-मेढ़े रास्तो से निकल कर बाहर निकलना है। यह मेरा है, यह भाव बना ही रहता है। कभी इसको अपना मानते हैं, कभी उसको। हम करोड़ों जन्मों तक पाप-पुण्यों को भोगते हुए नाना योनियों को प्राप्त होते रहते हैं। कामना, वासना में फँस कर बार-बार जन्म मरण के चक्र में फँसे रहते हैं।

हम असङ्ग रूपी शस्त्र के द्वारा इस चक्र से छूट सकते हैं।

शुकदेव महामुनि की कथा है कि वे वैरागी महात्मा हैं। वे माँ के गर्भ से निकल कर कहने लगे कि मुझे संसार में कुछ करना ही नहीं है। शुकदेव जी महर्षि वेदव्यास जी के पुत्र थे। वेदव्यास जी ने उन्हें श्रीमद्भागवत सुना कर नियन्त्रित किया, लेकिन शुकदेव जी का ज्ञान अधूरा था, शुकदेव जी के कुछ प्रश्न थे। वेदव्यासजी ने उन प्रश्नों के उत्तर के लिए शुकदेव जी को राजा जनक के पास भेजा।

शुकदेव जी ने ही राजा परीक्षित जी को श्रीमद्भागवत सुनाई थी। जनक के रूप में हम सीताजी के पिताजी को ही जानते मानते हैं। जनकजी एक पद है। भागवत् में तिहत्तर जनक जी बताये गये है। उनचासवें जनक सीरध्जव सीताजी के पिता हैं।

जनकजी के पास प्रश्नों के उत्तर के लिए शुकदेवजी को जाना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने सोचा कि मैं संसार के सबसे बड़े ज्ञानी का पुत्र हूँ। अट्ठारह पुराण और चार वेदों की रचना जिसने की, उन महामुनि का पुत्र होने के बाद मैं वैरागी जनकजी क्षत्रिय के पास शिक्षा लेने क्यों जाऊँ, किन्तु पिताजी की आज्ञा थी।

कई दिनों की यात्रा कर के शुकदेव जी मिथिला प्रदेश में राजा जनक के द्वार पर पहुँचे। उनके मन में बड़ा मलाल था। उन्होंने द्वारपाल को बहुत सारे विशेषणों से युक्त अपना नाम बता कर कहा कि राजा जनक जी को कह दो कि शुकदेव महामुनि उनके

दर्शन के लिए पधारें हैं। वैसा ही द्वारपाल ने जाकर जानकजी को बताया। जनकजी ने स्वभाव के विपरीत कोई प्रतिक्रिया भी नहीं दी। उन्हें खड़ा रखा।

साधु-सन्तों को कभी ऐसे खड़ा रखा हो, ऐसा हुआ ही नहीं था। शुकदेव जी बड़े आहत हुए, मन में विचार आया कि जनकजी दौड़ते हुए आएँगे और उनके चरण धोएँगे। द्वारपालों ने बैठने को कहा, पर शुकदेवजी बोले मैं राजा जनक से ही मिलने आया हूँ। मैं नहीं बैठूँगा। ऐसे नये-नये द्वारपालों द्वारा अपना परिचय बताते हुए राजा जनक से मिलना चाहते रहे। धीरे-धीरे अपने नाम के साथ लगाने के सारे विशेषण खत्म हो गये।

वे तपस्वी थे। सात दिन द्वार पर खड़े रहे, आसान भी नहीं बदला। सात दिन बाद शुकदेव जी ने द्वारपाल से कहा कि राजा जनक से जाकर कह दो कि उनसे ज्ञान की आकाङ्क्षा से जङ्गल से शुकदेव जी आये हैं। जब शुकदेवजी ने कहलवाया कि ज्ञान की आकाङ्क्षा से शुकदेवजी आये है, तो स्वयं जनकजी उन्हें लेने द्वार पर गये। उनको आसन दिया और स्वयं चरण धोए। शुकदेवजी अचम्भित हो गए। सात दिन तक खड़ा रखा, अब भोजन, विश्राम के लिए पूछ रहें हैं।

शुकदेव जी अपने प्रश्न पूछना चाह रहे थे, जनक जी ने कहा आपसे कुछ काम है। शुकदेव जी की बात बिना सुने ही जनकजी ने कहा आप सही समय पर आये हैं। मिथिला की देवी की पूजा रात्रि को होगी। परम्परा है कि वीतरागी संन्यासी तेल के भरे हुए पात्र को सिर पर उठा कर मिथिला की प्रदक्षिणा करते हैं। आप हिमालय से दर्शन देने को पधारें हैं। आपसे उत्तम वीतरागी कौन मिलेगा?

बड़ा सा पात्र, तेल से लबालब भरा हुआ, मुझे अकेले ही उठाना है, शुकदेव जी बड़े परेशान हुए। एक बूँद भी तेल छलकना नहीं चाहिए। परेशान से शुकदेव जी ने पात्र सिर पर रखकर मिथिला का फेरा लगाया। लौटने पर जनकजी ने शुकदेव जी का पूजन और प्रणाम किया। जनकजी ने शुकदेव जी से पूछा, मिथिला नगरी अति सुन्दर है। आपको कैसी लगी? जगह-जगह इत्र के फब्बारे लगे थे। फूलों से मिथिला नगरी सजी हुई थी।

शुकदेव जी ने कहा कि उन्होंने कुछ भी नहीं देखा, सिर पर रखे पात्र और तेल पर ही उनका ध्यान केन्द्रित था। तब जनकजी ने कहा पहली शिक्षा पूरी हुई। शुकदेव जी ने पूछा, पहली शिक्षा कौनसी ?

जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ जैसे जल में कमल का फूल रहे।

संसार में रहें तो सारा ध्यान परमात्मा पर ही केन्द्रित रहे ।

कमल जैसे जल में रहता है, पर जल की बूँदे उस पर टिकती नहीं हैं, वैसे ही हमें निस्सङ्ग रहना चाहिए।

संसार के सारे आकर्षण होंगे, उनको छोड़ कर जा नहीं सकते। जिस तरह आपने अपना मन तेल में लगाया, उसी प्रकार सारा ध्यान परमात्मा में लगाने से निसङ्गता का ध्यान होता है। शुकदेव जी अति प्रसन्न हुए। सात दिन वे राजा जनक के पास रहे और उनसे सात शिक्षाएँ प्राप्त कीं।

15.4

ततः(फ्) पदं(न्) तत्परिमार्गितव्यं(यँ) यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं(म्) पुरुषं(म्) प्रपद्ये यतः(फ्) प्रवृत्तिः(फ्) प्रसृता पुराणी॥15.4॥

उसके बाद उस परमपद (परमात्मा) की खोज करनी चाहिये जिसको प्राप्त होने पर मनुष्य फिर लौटकर संसार में नहीं आते और जिससे अनादिकाल से चली आने वाली (यह) सृष्टि विस्तार को प्राप्त हुई है, उस आदिपुरुष परमात्मा के ही मैं शरण हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं-

"हे अर्जुन! वैराग्य रूपी शस्त्र से सब मोह को काट कर उस परमपिता परमेश्वर को भली-भाँति पूजना चाहिए। उस परमपद (परमात्मा) की खोज करनी चाहिये, जिसको प्राप्त होने पर मनुष्य फिर लौटकर संसार में नहीं आते।"

हमें सोचना चाहिए कि मैं उस आदिपुरुष परमात्मा की ही शरण में हूँ, जिससे अनादिकाल से चली आने वाली (यह) सृष्टि विस्तार को प्राप्त हुई है। जिसको जान लेने से मनुष्य इस संसार में लौट कर नहीं आता। उसी परमात्मा का मनन एवम् ध्यान करना चाहिए। जो ज्ञानी इस प्रकार का मनन और ध्यान करते हैं, उनकी स्थिति श्रीभगवान हमें अगले श्लोक में बता रहें हैं।

15.5

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः(स्) सुखदुःखसञ्ज्ञैः(र्), गच्छन्त्यमूढाः(फ्) पदमव्ययं(न्) तत्।।5।।

जो मान और मोह से रहित हो गये हैं, जिन्होंने आसक्ति से होने वाले दोषों को जीत लिया है, जो नित्य-निरन्तर परमात्मा में ही लगे हुए हैं, जो (अपनी दृष्टि से) सम्पूर्ण कामनाओं से रहित हो गये हैं, जो सुख-दुःख नाम वाले द्वन्द्वों से मुक्त हो गये हैं, (ऐसे) (ऊँची स्थिति वाले) मोह रहित साधक भक्त उस अविनाशी परमपद (परमात्मा) को प्राप्त होते हैं।

विवेचन - श्रीभगवान कहते हैं कि जो मान और मोह से रहित महात्मा हैं। जिन्होंने आसक्ति से होने वाले दोषों को जीत लिया है। जो नित्य-निरन्तर परमात्मा में ही लगे हुए हैं। जो (अपनी दृष्टि से) सम्पूर्ण कामनाओं से रहित हो गये हैं, उनके लक्षण इस प्रकार के होते हैं:-

पहला लक्षण है कि मन से मान और मोह नष्ट हो जाता है।

दूसरा लक्षण है कि आसक्ति रूपी दोष मिट जाता है।
आसक्ति का अर्थ है कि जो अच्छा लगता है, वह सदा मेरे पास रहे, जो अच्छा नहीं लगता, वो चला जाये, यह आसक्ति है। आज की खाई हुई जलेबी को स्वादिष्ट लगने पर एक दिन, महीनों, सालों तक याद रखना आसक्ति है। कई बार हम पदार्थ या वस्तु से चिपक जाते हैं।

तीसरा लक्षण है नित्य अध्ययन।
कभी-कभी विवेचन, पूजा, गीता में मन लगता है, कभी नहीं भी लगता है। श्रीभगवान कहते हैं, ऐसे महात्माओं का नित्य अध्ययन में ध्यान रहता है।

चौथा लक्षण है, कामनाओं से मुक्त हो जाना ।
मन का भोजन मिला, नहीं मिला, सब ठीक है। जलेबी मिली कि खीर मिली कि रूखी रोटी मिली। सब समान हैं। उसकी कोई कामनाएं नहीं होतीं।

ऐसे योगी की पाँचवी स्थिति है कि वह सुख-दुःख, राग-द्वेष, मानहानि, जीवन-मरण आदि जितने द्वन्द्व हैं, उन सभी द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाता है।

ऐसा योगी, ज्ञानीजन उस परम पद को प्राप्त करता है, जहाँ से लौट कर नहीं आना पड़ता है। जो ज्ञानी इस परम पद को प्राप्त कर लेता है,
श्रीभगवान उसे अपनी शरण में स्थान देते हैं।

15.6

न तद्भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं(म्) मम।।6।।

उस (परमपद) को न सूर्य, न चन्द्र (और) न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है (और) (जिसको) प्राप्त होकर जीव लौट कर (संसार में) नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि परम पद को प्राप्त करने के बाद, उस प्राणी को फिर संसार में नहीं आना पड़ता ।

चौदह लोकों से तो जाने वाला जीव बार बार लौट कर आता है।
ईश्वर को प्राप्त लोक को सूर्य, चन्द्रमा प्रकाशित नहीं करते हैं, वह स्वप्रकाशित होता है।

आगे के तीन श्लोकों में जीवात्मा के आवागमन के चक्र को बताया गया है। यह जीव कैसे एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करता है? किस कारण से उसे अलग-अलग योनियों में जाना पड़ता है? यह हम अगले सत्र में जानेंगे।

इसी के साथ आज का विवेचन सत्र समाप्त हुआ और प्रश्न-उत्तर आरम्भ हुए।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - कामिनी दीदी
प्रश्न - क्या मुझे इस अध्याय के चौथे श्लोक का अर्थ बता देंगे? मुझे समझ नहीं आया ।
उत्तर - चौथा श्लोक है:

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥ 15:4॥
इस श्लोक में श्रीभगवान कह रहे हैं कि जो इस प्रकार से उस अश्वत्थ वृक्ष को जान जाता है वह उस परमेश्वर को भली-भाँति जानने लगता है। जो ब्रह्माण्ड के स्वरूप को जान जाता है, वह परमेश्वर को भी जान जाता है। एक बार परमेश्वर को जानने के बाद फिर इस संसार में वापस नहीं आना पड़ता।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
फिर उसे बार-बार जन्म लेकर इस पृथ्वी पर नहीं आना पड़ता। वह जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है। ऐसे योगी का वर्णन करते हुए श्रीभगवान ने यह श्लोक कहा है। इस श्लोक में श्रीभगवान ऐसे योगी का ही वर्णन कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता - गणेश भैया
प्रश्न -आपने जो ऊपर के श्लोक में अश्वत्थ वृक्ष का वर्णन किया है तो क्या वह वृक्ष बड़ का भी हो सकता है?
उत्तर - अश्वत्थ शब्द के दो अर्थ होते हैं। **अश्वत्थ अर्थात् जो कल तक न रहे, जो हर क्षण बदल रहा है।** यह संसार हर पल बदलता है। इसका अस्तित्व एक जैसा नहीं रहता। इसके अन्दर स्थिरता नहीं है।

पीपल का पेड़ भी अश्वत्थ कहलाता है क्योंकि पीपल के पेड़ का पत्ता अत्यन्त चञ्चल होता है। जब वायु की गति एकदम धीमी होती है, उस समय भी पीपल के पत्ते हिलते रहते हैं। उसके इतना चञ्चल होने के कारण श्रीभगवान ने अश्वत्थ की उपमा पीपल के पेड़ को दी है।

प्रश्नकर्ता- चन्द्रप्रभा दीदी
प्रश्न - जब अच्छा गुरु मिल जाता है, तो साधारण शिष्य भी बहुत उन्नति कर लेता है। महाभारत काल में तो गुरु द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह जैसे गुरु थे, फिर भी युद्ध क्यों हुआ? उन गुरुओं ने अपने शिष्यों को क्यों नहीं समझाया?

उत्तर - चाहे सतयुग हो, चाहे त्रेता युग हो या द्वापर हो, हर युग में युद्ध तो होते ही हैं।
हमारा व्यवहार हमारे सत्त्व, रज और तमो गुण के ऊपर निर्भर करता है। श्रीभगवान कहते हैं कि कोई भी समय कोई भी पदार्थ इन तीनों गुणों से शून्य नहीं हो सकता। अच्छाई और बुराई हर समय रहने वाली है। यदि बुराई नहीं होगी तो हमें अच्छाई का पता नहीं चलेगा। सदा ही सब लोग अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं।

जिसमें अच्छाई प्रधान हो जाती है, वह दैवीय कहलाता है और जिसमें तम प्रधान होता है, वह आसुरी कहलाता है। ये दोनों वृत्तियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं।

यदि संसार के सभी व्यक्ति सदा के लिए अच्छे हो जाएंजाएँ तो फिर जीवन में नीरसता हो जाएगी। हम सब रोबोट की तरह, मशीन की तरह काम करेंगे। हम यदि कुछ गड़बड़ नहीं कर सकते तो फिर तो हम मशीन हो जाएँगे और हमें कोई स्वतन्त्रता नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता - गोपाल भैया
प्रश्न - अभी आपने जो इस अध्याय का विवेचन बताया उसमें श्रीभगवान कहाँ रहते हैं, इसका वर्णन हुआ है। दसवें और ग्यारहवें अध्याय में श्रीभगवान ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया है।
मेरा प्रश्न यह है कि गीता पढ़ने के लिए आपने हमें सबसे पहले बारहवाँ और पन्द्रहवाँ अध्याय क्यों पढ़ाया जाता है? हमारा गीता ज्ञान इन अध्यायों से क्यों शुरू हुआ?
उत्तर - आपको सबसे पहले यह समझना चाहिए कि श्रीमद्भगवद्गीता कोई उपन्यास नहीं है। श्रीमद्भागवद्गीता एक शास्त्र है और शास्त्र को पढ़ने की एक विधि होती है। यह विधि हमें हमारे गुरुओं द्वारा बताई जाती है। गुरु शिष्य के स्तर से यह निश्चित करते हैं कि वह कहाँ से पढ़ाई शुरू करे।

'मुझे क्या बात पहले जाननी चाहिए? और मैं क्या बात जानने की योग्यता रखता हूँ'? यह देखना, मेरे गुरु के लिए आवश्यक है।

श्रीमद्भागवद्गीता जी को पढ़ने की यह प्राचीन विधि है। बारहवाँ अध्याय सबसे पहले पढ़ाया जाता है। इसके कई कारण भी हैं। बारहवाँ अध्याय सबसे छोटा है, सबसे सरल है। इस अध्याय में क्या है? यह जानने पर शिष्य के अन्दर आगे पढ़ने की भावना जागृत होती है और रुचि भी बढ़ती है।

पहला अध्याय बड़ा है। यदि शुरू में ही इतना बड़ा अध्याय पढ़ा दिया जाएगा तो शिष्य को अरुचि भी हो सकती है। पहले अध्याय में सिर्फ अर्जुन का विषाद ही वर्णित है। उसका नाम भी अर्जुनविषादयोग है। उसमें अर्जुन सिर्फ अपना शोक ही प्रकट कर रहे हैं, इसलिए पहले अध्याय को पढ़कर किसी को लग सकता है कि इसमें क्या बड़ी बात है, यह तो हम जानते ही हैं।

बारहवाँ अध्याय भक्तियोग है। उसे पढ़ने के बाद मन में भक्ति उत्पन्न होती है। श्रीभगवान की भक्ति प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त होती है। इसीलिए बारहवाँ अध्याय सबसे पहले पढ़ाया जाता है।

इसके उपरान्त श्री हनुमान चालीसा पाठ के साथ आज के सुन्दर विवेचन सत्र का समापन हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||